

पर्यावरणीय नैतिकता और सतत जीवनशैली: एक अंतर्विषयी एवं भौगोलिक अध्ययन Environmental Ethics and Sustainable Lifestyles: An Interdisciplinary and Geographical Study

डॉ भूपेश कुमार मिश्र¹, डॉ श्रवण कुमार शुक्ल²

¹असिस्टेंट प्रोफेसर पी जी भूगोल विभाग जय प्रकाश विश्वविद्यालय छपरा, सारण, बिहार

²असिस्टेंट प्रोफेसर, भूगोल विभाग, आचार्य नरेंद्र देव किसान पी जी कालेज बभनान, गोंडा उ० प्र०

शोध सारांश

वर्तमान समय में पर्यावरणीय संकट केवल प्राकृतिक संसाधनों की कमी अथवा प्रदूषण की समस्या नहीं है, बल्कि यह मानव व्यवहार, उपभोग की प्रवृत्तियों और प्रकृति के प्रति हमारी नैतिक जिम्मेदारियों से भी जुड़ा हुआ है। तीव्र नगरीकरण, जनसंख्या का बढ़ता दबाव, संसाधनों का अनियंत्रित दोहन तथा उपभोक्तावादी जीवनशैली ने पर्यावरणीय संतुलन को प्रभावित किया है। ऐसी परिस्थितियों में पर्यावरणीय नैतिकता और सतत जीवनशैली की अवधारणाएँ विशेष महत्त्व रखती हैं। पर्यावरणीय नैतिकता मनुष्य और प्रकृति के संबंधों को नैतिक दृष्टिकोण से समझने का आधार प्रदान करती है, जबकि सतत जीवनशैली प्राकृतिक संसाधनों के विवेकपूर्ण उपयोग और पर्यावरणीय प्रभावों को कम करने का व्यावहारिक मार्ग प्रस्तुत करती है। प्रस्तुत शोध-पत्र में पर्यावरणीय नैतिकता और सतत जीवनशैली के अंतर्संबंधों का अंतर्विषयी एवं भौगोलिक परिप्रेक्ष्य में विश्लेषण किया गया है। अध्ययन में मानव-प्रकृति संबंध, प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग, पर्यावरणीय न्याय, भारतीय ज्ञान परंपरा तथा दैनिक जीवन में अपनाई जा सकने वाली पर्यावरण-अनुकूल गतिविधियों पर विशेष ध्यान दिया गया है। अध्ययन द्वितीयक स्रोतों पर आधारित वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक प्रकृति का है। इसमें पर्यावरणीय दर्शन, पर्यावरण-अनुकूल व्यवहार, न्याय और भारतीय पारिस्थितिकी से जुड़े साहित्य तथा अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं के दस्तावेजों की समीक्षा की गई है। अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि सतत जीवनशैली को केवल व्यक्तिगत व्यवहार में परिवर्तन तक सीमित नहीं रखा जा सकता। इसके लिए सामाजिक जागरूकता, पर्यावरणीय शिक्षा, स्थानीय संसाधनों का संरक्षण, उत्तरदायी उपभोग तथा प्रभावी नीतिगत प्रयासों की आवश्यकता है। भौगोलिक दृष्टिकोण इस विषय को अधिक व्यापक बनाता है, क्योंकि पर्यावरणीय समस्याओं और उनके समाधान का स्वरूप स्थान, संसाधनों की उपलब्धता, सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों तथा स्थानीय जीवनशैली के अनुसार बदलता रहता है।

मूल शब्द: पर्यावरणीय नैतिकता, सतत जीवनशैली, भौगोलिक दृष्टिकोण, पर्यावरणीय न्याय, प्राकृतिक संसाधन, उत्तरदायी उपभोग, पर्यावरणीय शिक्षा।

1. प्रस्तावना

प्रकृति और मनुष्य के बीच संबंध मानव सभ्यता के विकास का आधार रहा है। जल, भूमि, वन, वायु तथा जैव विविधता जैसी प्राकृतिक संपदाएँ न केवल मानवीय जीवन की आवश्यकताओं को पूरा करती हैं, बल्कि आर्थिक गतिविधियों और सामाजिक विकास को भी दिशा प्रदान करती हैं। परंतु आधुनिक विकास की प्रक्रिया में प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग अनेक स्थानों पर उनकी पुनरुत्पादन क्षमता और पर्यावरणीय वहन क्षमता से अधिक होने लगा है। इसके परिणामस्वरूप प्रदूषण, भूमि क्षरण, जल संकट, जैव विविधता का ह्रास और जलवायु परिवर्तन जैसी समस्याएँ गंभीर होती जा रही हैं। इस स्थिति को वैश्विक आकलन भी रेखांकित करते हैं। रॉकस्ट्रॉम और उनके सहयोगियों ने “प्लैनेटरी बाउंड्रीज़” की अवधारणा प्रस्तुत करते हुए नौ पृथ्वी-प्रणाली सीमाओं की पहचान की और अपने 2009 के आकलन में जलवायु परिवर्तन, जैव विविधता ह्रास की दर तथा नाइट्रोजन चक्र से जुड़ी तीन सीमाओं के पार हो जाने का अनुमान लगाया।¹ संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम के छोटे ग्लोबल एनवायरनमेंट आउटलुक (GEO-6) के अनुसार, पर्यावरण संबंधी नीतिगत प्रयासों के बावजूद वैश्विक पर्यावरण की समग्र स्थिति पहले संस्करण (1997) के बाद से बिगड़ती रही है।² इन समस्याओं को केवल वैज्ञानिक या तकनीकी दृष्टिकोण से समझना पर्याप्त नहीं है। यह प्रश्न भी महत्वपूर्ण है कि मनुष्य प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग किस उद्देश्य से करता है, उसकी आवश्यकताओं और इच्छाओं के बीच क्या अंतर है तथा वर्तमान पीढ़ी की आवश्यकताओं को पूरा करते समय भविष्य की पीढ़ियों के अधिकारों का कितना ध्यान रखा जाता है। इसी संदर्भ में पर्यावरणीय नैतिकता की भूमिका सामने आती है।

पर्यावरणीय नैतिकता मनुष्य को यह विचार करने के लिए प्रेरित करती है कि प्रकृति का महत्व केवल उसकी आर्थिक उपयोगिता तक सीमित नहीं है। वन, नदियाँ, पर्वत, जीव-जंतु और पारिस्थितिक तंत्र अपने अस्तित्व के कारण भी संरक्षण के अधिकारी हैं। एल्डो लियोपोल्ड ने भूमि नैतिकता की अवधारणा के माध्यम से मनुष्य और प्राकृतिक समुदाय के संबंधों को नैतिक उत्तरदायित्व के व्यापक संदर्भ में समझने का प्रयास किया।³ इसी प्रकार आर्ने नेस ने गहन पारिस्थितिकी के विचार के माध्यम से प्रकृति के अंतर्निहित मूल्य और मानव-केंद्रित दृष्टिकोण की सीमाओं की ओर ध्यान आकर्षित किया।⁴ पर्यावरणीय नैतिकता का व्यावहारिक पक्ष सतत जीवनशैली में दिखाई देता है। ऊर्जा की बचत, जल का विवेकपूर्ण उपयोग, सार्वजनिक परिवहन को प्राथमिकता, स्थानीय उत्पादों का उपयोग, भोजन की बर्बादी में कमी तथा कचरे का पृथक्करण जैसी गतिविधियाँ पर्यावरण पर मानवीय दबाव कम करने में योगदान दे सकती हैं। हालाँकि, इन गतिविधियों की प्रभावशीलता स्थानीय परिस्थितियों, उपलब्ध सुविधाओं और सामाजिक-आर्थिक संसाधनों पर भी निर्भर करती है। भौगोलिक दृष्टिकोण से इस विषय का अध्ययन विशेष महत्व रखता है। ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि, सिंचाई, ईंधन और वन संसाधनों का उपयोग पर्यावरणीय संबंधों को निर्धारित करता है, जबकि नगरीय क्षेत्रों में परिवहन, आवास, ऊर्जा खपत, ठोस अपशिष्ट और जल निकासी प्रमुख प्रश्न बन जाते हैं। इसलिए सतत जीवनशैली के लिए सभी स्थानों पर एक समान समाधान अपनाने के बजाय स्थानीय पर्यावरणीय एवं सामाजिक परिस्थितियों के अनुरूप रणनीतियाँ विकसित करना आवश्यक है। भारत की पारंपरिक ज्ञान परंपराओं में भी प्रकृति के प्रति सम्मान, संयम और संसाधनों के विवेकपूर्ण उपयोग के विचार मिलते हैं। अथर्ववेद का पृथ्वी सूक्त पृथ्वी और मानव के संबंध को

भावनात्मक एवं नैतिक आधार प्रदान करता है। फिर भी पारंपरिक विचारों को आधुनिक पर्यावरणीय समस्याओं के समाधान के रूप में अपनाते समय उनके सामाजिक, आर्थिक और वैज्ञानिक संदर्भों का समालोचनात्मक अध्ययन आवश्यक है।

इसी पृष्ठभूमि में प्रस्तुत अध्ययन पर्यावरणीय नैतिकता और सतत जीवनशैली के संबंधों को समझने का प्रयास करता है। इसका उद्देश्य केवल पर्यावरणीय समस्याओं का वर्णन करना नहीं, बल्कि उन नैतिक मूल्यों, सामाजिक व्यवहारों और भौगोलिक परिस्थितियों की पहचान करना है, जिनके आधार पर अधिक जिम्मेदार और पर्यावरण-सम्मत जीवनशैली विकसित की जा सकती है।

2. साहित्य समीक्षा

इस खंड में अध्ययन से जुड़े साहित्य को पाँच विषयगत समूहों में रखकर समीक्षा की गई है: पर्यावरणीय नैतिकता के सैद्धांतिक आधार, सतत जीवनशैली और उपभोग, पर्यावरण-अनुकूल व्यवहार और संरचना का प्रश्न, पर्यावरणीय न्याय एवं भारतीय संदर्भ, तथा शिक्षा और अंतरराष्ट्रीय नीतिगत ढाँचे।

2.1 पर्यावरणीय नैतिकता के सैद्धांतिक आधार

पर्यावरणीय नैतिकता की चर्चा में लियोपोल्ड की भूमि नैतिकता एक आधारभूत संदर्भ है, जिसमें नैतिक समुदाय की सीमा का विस्तार भूमि, जल, पौधों और जीव-जंतुओं तक करने का विचार मिलता है।⁵ नेस ने 1973 के अपने संक्षिप्त लेख में "उथले" और "गहन" दीर्घकालिक पारिस्थितिकी आंदोलनों के बीच अंतर किया। उनके अनुसार उथला आंदोलन प्रदूषण और संसाधन-क्षय से संघर्ष करता है, पर उसका केंद्रीय लक्ष्य विकसित देशों के लोगों का स्वास्थ्य और समृद्धि है; इसके विपरीत गहन पारिस्थितिकी मनुष्य-और-पर्यावरण की द्वैत दृष्टि के स्थान पर जीवों को परस्पर संबंधों के एक समग्र जाल की गाँठों के रूप में देखती है।⁶ इन दोनों विचारकों का साझा योगदान यह है कि पर्यावरणीय संकट को केवल तकनीकी या आर्थिक प्रश्न न मानकर मूल्यों और दृष्टिकोण के प्रश्न के रूप में भी देखा जाए।

2.2 सतत जीवनशैली और उपभोग

सतत जीवनशैली को नीतिगत स्तर पर महत्व मिलने का एक संकेत यह है कि सतत विकास लक्ष्यों में शिक्षा (लक्ष्य 4, विशेषतः 4.7) और उत्तरदायी उपभोग (लक्ष्य 12.8) के माध्यम से जीवनशैली पहली बार स्पष्ट रूप से सम्मिलित हुई।⁷ संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण सभा के छठे सत्र के प्रस्ताव में भी प्रकृति के साथ सामंजस्य में रहने वाली जीवनशैलियों को बढ़ावा देने, तथा इस प्रक्रिया में स्थानीय समुदायों और आदिवासी लोगों की भूमिका को मान्यता देने की बात कही गई है।⁸ UNEP की एक रिपोर्ट सतत जीवनशैली को बढ़ावा देने और उसके संप्रेषण के लिए चार-चरणीय रणनीति-रूपरेखा, आठ संचालन सिद्धांत और विश्व भर की 16 पहलों के उदाहरण प्रस्तुत करती है; इसके प्रकरण भोजन, आवास, गतिशीलता, अवकाश और मानवीय संबंध जैसी बुनियादी आवश्यकताओं के क्षेत्रों से जुड़े हैं।⁹ दूसरी ओर, जैक्सन का तर्क है कि समृद्धि को भौतिक संचय के बजाय कल्याण या क्षमताओं के रूप में परिभाषित करने पर भी आर्थिक वृद्धि की संरचनाएँ और उपभोक्तावादी मूल्य समाज को असतत परिणामों की ओर धकेलते हैं।¹⁰ यह दृष्टिकोण सतत जीवनशैली की चर्चा को व्यक्तिगत चयन से आगे बढ़ाकर आर्थिक संरचनाओं तक ले जाता है।

2.3 पर्यावरण-अनुकूल व्यवहार: ज्ञान से आचरण का अंतराल

कोल्मस और एजेमन (2002) ने पर्यावरणीय ज्ञान और जागरूकता तथा वास्तविक पर्यावरण-अनुकूल

व्यवहार के बीच के अंतराल को समझाने वाले प्रमुख सैद्धांतिक ढाँचों की समीक्षा की और निष्कर्ष निकाला कि यह प्रश्न इतना जटिल है कि इसे किसी एक ढाँचे से नहीं समझा जा सकता। उन्होंने आंतरिक कारकों (प्रेरणा, ज्ञान, मूल्य, दृष्टिकोण, भावनाएँ, प्राथमिकताएँ आदि) के साथ संस्थागत, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक बाह्य कारकों की भी चर्चा की।¹¹ इस लेख की आलोचनात्मक प्रतिक्रियाएँ भी महत्वपूर्ण हैं। कर्टनी-हॉल और रॉजर्स ने पर्यावरणीय नैतिकता के नियतीकरण तथा नैतिक कर्ता की जटिलता की उपेक्षा जैसे अंतरालों की ओर ध्यान दिलाया¹², जबकि ओ'डोनोग और लोट्ज़-सिसित्का ने ऐसे शोध में निहित साधनवादी मान्यताओं तथा सामाजिक राजनीति और इतिहास की अनदेखी पर प्रश्न उठाए।¹³ इन चर्चाओं से इस शोध-पत्र का वही तर्क पुष्ट होता है कि जीवनशैली-परिवर्तन को केवल व्यक्तिगत इच्छाशक्ति का विषय मानना अपर्याप्त है।

2.4 पर्यावरणीय न्याय और भारतीय संदर्भ

प्लॉसबर्ग के अनुसार न्याय केवल वस्तुओं के उचित वितरण का प्रश्न नहीं है; पर्यावरणीय न्याय के आंदोलनों में वितरण के साथ मान्यता, भागीदारी और क्षमताओं जैसे आयाम भी निहित हैं, और इस ढाँचे को गैर-मानवीय प्रकृति के प्रति न्याय तक विस्तारित किया जा सकता है।¹⁴ भारतीय संदर्भ में गाडगिल और गुहा¹⁵ (1995) ने प्राकृतिक संसाधनों के लिए विभिन्न सामाजिक समूहों और आर्थिक हितों के बीच प्रतिस्पर्धा को पर्यावरणीय संघर्षों की जड़ के रूप में विश्लेषित किया। उनकी चर्चा में समाज के “सर्वभक्षी”, “पारिस्थितिकी-तंत्र के लोग” और “पारिस्थितिक शरणार्थी” जैसे वर्गीकरण भी शामिल हैं, जो यह दिखाते हैं कि पर्यावरणीय क्षति और संसाधनों के लाभों का वितरण असमान होता है। भारतीय ज्ञान परंपरा के संदर्भ में पृथ्वी सूक्त (अथर्ववेद 12.1) का अंग्रेज़ी अनुवाद ब्लूमफील्ड¹⁶ (1897) जैसे अनुवादकों के माध्यम से उपलब्ध है; इस पाठ का महत्व नैतिक प्रेरणा के रूप में समझा जाना चाहिए, न कि आधुनिक पर्यावरण विज्ञान के प्रत्यक्ष विकल्प के रूप में।

2.5 शिक्षा और अंतरराष्ट्रीय नीतिगत ढाँचे

यूनेस्को का 2017 का दस्तावेज़ सतत विकास के लिए शिक्षा (ESD) को ऐसा माध्यम बताता है जो शिक्षार्थियों को पर्यावरणीय अखंडता, आर्थिक व्यवहार्यता और न्यायपूर्ण समाज के लिए सोच-समझकर निर्णय लेने और उत्तरदायित्वपूर्ण ढंग से कार्य करने में सक्षम बनाता है; इसमें प्रत्येक सतत विकास लक्ष्य के लिए सांकेतिक सीखने के उद्देश्य, विषय और गतिविधियाँ सुझाई गई हैं।¹⁷ इसी दिशा में UNEP का 2010 का प्रकाशन उत्तरदायी उपभोग की शिक्षा के लिए नीतिनिर्माताओं तथा शिक्षा-अधिकारियों, शिक्षक-प्रशिक्षकों और शिक्षकों के लिए अनुशंसाएँ और दिशानिर्देश प्रस्तुत करता है।¹⁸ ये दस्तावेज़ यह संकेत देते हैं कि सतत जीवनशैली के लिए शिक्षा और संस्थागत समर्थन एक साथ आवश्यक हैं।

2.6 साहित्य से उभरा शोध-अंतराल

समीक्षित साहित्य में पर्यावरणीय दर्शन, उपभोग एवं व्यवहार, न्याय तथा नीतिगत ढाँचों पर पर्याप्त सामग्री उपलब्ध है, परंतु ये चर्चाएँ प्रायः अलग-अलग धाराओं में चलती हैं। प्रस्तुत अध्ययन इन्हें एक अवधारणात्मक ढाँचे में जोड़ने का प्रयास करता है, जिसमें नैतिक मूल्यों को सतत जीवनशैली का आधार माना गया है और ग्रामीण-नगरीय भौगोलिक भिन्नताओं तथा पर्यावरणीय न्याय को जीवनशैली-परिवर्तन की शर्तों के रूप में देखा गया है। तालिका 1 में समीक्षित प्रमुख स्रोतों का सार दिया गया है।

तालिका 1: समीक्षित प्रमुख स्रोतों का सार

स्रोत	केंद्रीय योगदान	इस अध्ययन से संबंध
Leopold (1949)	भूमि नैतिकता: मनुष्य प्राकृतिक समुदाय का सदस्य	नैतिक उत्तरदायित्व का आधार
Naess (1973)	उथली बनाम गहन पारिस्थितिकी	मानव-केंद्रित दृष्टि की समीक्षा
Rockström et al. (2009)	प्लैनेटरी बाउंड्रीज़ की अवधारणा	पर्यावरणीय दबाव का वैश्विक संदर्भ
Jackson (2009)	वृद्धि-संरचनाएँ और उपभोक्तावादी मूल्य	जीवनशैली और संरचना का संबंध
Kollmuss & Agyeman (2002)	ज्ञान-आचरण अंतराल के आंतरिक एवं बाह्य कारक	व्यवहार-परिवर्तन की सीमाएँ
Schlosberg (2007)	न्याय का बहुआयामी स्वरूप	पर्यावरणीय न्याय का ढाँचा
Gadgil & Guha (1995)	भारत में संसाधन-संघर्ष और असमानता	भारतीय एवं भौगोलिक संदर्भ
UNESCO (2017); UNEP (2010, 2017, 2019, 2024)	शिक्षा, जीवनशैली और नीतिगत दिशानिर्देश	संस्थागत सहयोग और सुझाव

अध्ययन के उद्देश्य

प्रस्तुत अध्ययन का प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित है -

1. पर्यावरणीय नैतिकता और सतत जीवनशैली के बीच संबंधों का अंतर्विषयी एवं भौगोलिक विश्लेषण करना।
2. ग्रामीण एवं नगरीय क्षेत्रों में पर्यावरणीय चुनौतियों के भिन्न स्वरूपों का विश्लेषण करना।
3. भारतीय ज्ञान परंपरा में प्रकृति-सम्मत जीवन के विचारों, पर्यावरणीय न्याय तथा भावी पीढ़ियों के प्रति उत्तरदायित्व की प्रासंगिकता पर विचार करना।
4. इस अध्ययन का उद्देश्य ऐसी व्यावहारिक अनुशंसाएँ प्रस्तुत करना है, जिन्हें व्यक्तिगत, सामुदायिक और नीतिगत स्तर पर अपनाकर सतत जीवनशैली को प्रोत्साहित किया जा सके।

अध्ययन प्रविधि

यह अध्ययन वर्णनात्मक, विश्लेषणात्मक एवं अवधारणात्मक प्रकृति का है। इसमें मुख्यतः द्वितीयक स्रोतों का उपयोग किया गया है। पर्यावरणीय नैतिकता, पारिस्थितिकी, सतत विकास, पर्यावरणीय शिक्षा तथा

उत्तरदायी उपभोग से संबंधित पुस्तकों, शोध-पत्रों और संस्थागत प्रकाशनों को अध्ययन का आधार बनाया गया है।

स्रोतों का चयन तीन मानदंडों पर किया गया: (क) विषय की मूल अवधारणाओं को स्थापित करने वाली प्रमुख रचनाएँ, (ख) अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं (UNEP, UNESCO, संयुक्त राष्ट्र) के आधिकारिक प्रकाशन, तथा (ग) भारतीय संदर्भ से संबंधित विद्वत्तापूर्ण कार्य। संदर्भों के प्रकाशन-विवरण की पुष्टि प्रकाशकों, संस्थागत भंडारों और पुस्तकालय-अभिलेखों से की गई है।

अध्ययन में साहित्य-विक्षेपण की सहायता से पर्यावरणीय नैतिकता की प्रमुख अवधारणाओं तथा सतत जीवनशैली के विभिन्न आयामों की व्याख्या की गई है। इसके अतिरिक्त भौगोलिक दृष्टिकोण के अंतर्गत ग्रामीण एवं नगरीय क्षेत्रों में संसाधनों के उपयोग, पर्यावरणीय दबावों और स्थानीय परिस्थितियों की भूमिका पर विचार किया गया है।

इस शोध में प्राथमिक सर्वेक्षण अथवा क्षेत्रीय मापन के माध्यम से नए आँकड़े एकत्रित नहीं किए गए हैं। इसलिए इसके निष्कर्ष उपलब्ध साहित्य और अवधारणात्मक विक्षेपण पर आधारित हैं। अध्ययन की यह सीमा ध्यान में रखते हुए निष्कर्षों को किसी विशिष्ट क्षेत्र की प्रत्यक्ष अनुभवजन्य स्थिति का प्रतिनिधि नहीं माना जाना चाहिए।

पर्यावरणीय नैतिकता की अवधारणा एवं सैद्धांतिक आधार

पर्यावरणीय नैतिकता दर्शनशास्त्र और पर्यावरण अध्ययन की वह शाखा है, जो मनुष्य के प्राकृतिक पर्यावरण के प्रति कर्तव्यों, अधिकारों और नैतिक उत्तरदायित्वों का अध्ययन करती है। इसका केंद्रीय प्रश्न यह है कि प्रकृति का संरक्षण केवल इसलिए किया जाना चाहिए क्योंकि वह मनुष्य की आवश्यकताओं को पूरा करती है, या इसलिए भी कि प्राकृतिक तत्वों और अन्य जीवों का अपना अंतर्निहित महत्व है।

मानव-केंद्रित दृष्टिकोण में प्रकृति को मुख्यतः मानवीय आवश्यकताओं और विकास के साधन के रूप में देखा जाता है। इसके विपरीत, जीव-केंद्रित दृष्टिकोण सभी जीवित प्राणियों के महत्व पर बल देता है, जबकि पारिस्थितिकी-केंद्रित दृष्टिकोण संपूर्ण पारिस्थितिक तंत्र, उसके घटकों और उनके पारस्परिक संबंधों को महत्व प्रदान करता है।

लियोपोल्ड की भूमि नैतिकता के अनुसार मनुष्य को प्राकृतिक समुदाय से अलग किसी स्वतंत्र इकाई के रूप में नहीं, बल्कि उसके एक सदस्य के रूप में समझना चाहिए।¹⁹ इस विचार में भूमि, जल, वनस्पति और जीव-जंतुओं के बीच संबंधों की अखंडता पर बल दिया गया है। इसी प्रकार नेस की गहन पारिस्थितिकी प्रकृति के अंतर्निहित मूल्य को स्वीकार करते हुए मानव-केंद्रित सोच की आलोचनात्मक समीक्षा करती है।²⁰ इन दृष्टिकोणों का महत्व इस तथ्य में है कि वे पर्यावरण संरक्षण को केवल आर्थिक लाभ अथवा संसाधन प्रबंधन तक सीमित नहीं रहने देते। वे मनुष्य को अपनी जीवनशैली, उपभोग की आदतों और विकास संबंधी प्राथमिकताओं पर पुनर्विचार करने के लिए प्रेरित करते हैं। इस प्रकार पर्यावरणीय नैतिकता सतत जीवनशैली के लिए वैचारिक आधार प्रदान करती है।

सतत जीवनशैली: अर्थ एवं प्रमुख विशेषताएँ

सतत जीवनशैली की अवधारणा सतत विकास के उस व्यापक विचार से जुड़ी है, जिसमें वर्तमान की आवश्यकताओं की पूर्ति भावी पीढ़ियों की आवश्यकताओं से समझौता किए बिना करने पर बल दिया गया

है।²¹ इस अध्ययन में सतत जीवनशैली से आशय ऐसे जीवन-व्यवहारों और उपभोग पद्धतियों से है, जिनके माध्यम से वर्तमान आवश्यकताओं की पूर्ति करते हुए प्राकृतिक संसाधनों पर अनावश्यक दबाव को कम किया जा सके। इसका उद्देश्य जीवन की गुणवत्ता में सुधार करना है, लेकिन ऐसा करते समय पर्यावरणीय संतुलन, सामाजिक न्याय और भविष्य की पीढ़ियों की आवश्यकताओं की उपेक्षा नहीं होनी चाहिए।

सतत जीवनशैली केवल व्यक्तिगत इच्छाशक्ति का विषय नहीं है। इसका संबंध उपलब्ध सार्वजनिक परिवहन, स्वच्छ ऊर्जा, जलापूर्ति, कचरा प्रबंधन, स्थानीय बाजारों और सामाजिक सुविधाओं से भी है। उदाहरण के लिए, किसी व्यक्ति के लिए सार्वजनिक परिवहन अपनाना तभी व्यावहारिक विकल्प बनता है, जब उसके क्षेत्र में पर्याप्त और सुलभ परिवहन व्यवस्था उपलब्ध हो। इसी प्रकार जल संरक्षण के व्यक्तिगत प्रयासों के साथ जलापूर्ति और भू-जल प्रबंधन की प्रभावी व्यवस्था भी आवश्यक है।

सतत जीवनशैली की प्रमुख विशेषताओं में संसाधनों का विवेकपूर्ण उपयोग, ऊर्जा दक्षता, जल संरक्षण, अनावश्यक उपभोग में कमी, वस्तुओं का पुनः उपयोग, अपशिष्ट का पृथक्करण तथा स्थानीय परिस्थितियों के अनुरूप पर्यावरण-अनुकूल विकल्पों को अपनाना शामिल है। इन उपायों का उद्देश्य केवल संसाधनों की बचत नहीं, बल्कि ऐसी जीवन-पद्धति विकसित करना है, जिसमें पर्यावरणीय उत्तरदायित्व दैनिक व्यवहार का हिस्सा बन सके।

पर्यावरणीय नैतिकता और सतत जीवनशैली का संबंध

पर्यावरणीय नैतिकता और सतत जीवनशैली के बीच वैचारिक तथा व्यावहारिक संबंध है। पर्यावरणीय नैतिकता यह निर्धारित करने में सहायता करती है कि प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग में कौन-से मूल्य और सिद्धांत अपनाए जाने चाहिए, जबकि सतत जीवनशैली इन मूल्यों को दैनिक जीवन में लागू करने का माध्यम बनती है।

यदि कोई व्यक्ति जल को केवल उपभोग की वस्तु मानता है, तो उसके उपयोग में अपव्यय की संभावना बढ़ सकती है। इसके विपरीत, यदि जल को सीमित प्राकृतिक संसाधन और सामुदायिक आवश्यकता के रूप में देखा जाता है, तो उसका विवेकपूर्ण उपयोग अधिक महत्वपूर्ण बन जाता है। इसी प्रकार ऊर्जा की बचत, भोजन की बर्बादी रोकना और अनावश्यक वस्तुओं की खरीद कम करना पर्यावरणीय जिम्मेदारी की व्यावहारिक अभिव्यक्तियाँ हैं। फिर भी यह मानना उचित नहीं होगा कि पर्यावरणीय समस्याओं का समाधान केवल व्यक्तिगत व्यवहार में परिवर्तन से संभव है। औद्योगिक उत्पादन, ऊर्जा व्यवस्था, परिवहन अवसंरचना, नगरीय नियोजन और सरकारी नीतियाँ भी पर्यावरणीय प्रभावों को निर्धारित करती हैं। साहित्य-समीक्षा में देखा गया कि मूल्यों और ज्ञान के बावजूद आचरण में अंतराल बना रह सकता है²² और वृद्धि-आधारित आर्थिक संरचनाएँ भी जीवनशैली को प्रभावित करती हैं।²³ इसलिए सतत जीवनशैली को व्यक्तिगत जिम्मेदारी, सामुदायिक सहभागिता और संस्थागत सुधारों के संयुक्त परिणाम के रूप में समझना चाहिए।

भारतीय ज्ञान परंपरा और प्रकृति-सम्मत जीवनशैली

भारतीय ज्ञान परंपरा में प्रकृति के प्रति सम्मान, संयम और सह-अस्तित्व के अनेक विचार मिलते हैं। अथर्ववेद के पृथ्वी सूक्त में पृथ्वी के प्रति आत्मीय संबंध की अभिव्यक्ति मिलती है। भारतीय दार्शनिक

परंपराओं में अहिंसा, संयम और अपरिग्रह जैसे विचार भी महत्वपूर्ण हैं। इनका व्यापक अर्थ केवल व्यक्तिगत आचरण तक सीमित नहीं है, बल्कि आवश्यकताओं और इच्छाओं के बीच अंतर समझने तथा संसाधनों के अनावश्यक संचय से बचने तक विस्तारित किया जा सकता है। योग परंपरा के यम और नियम भी अनुशासित जीवन तथा आत्मसंयम पर बल देते हैं। हालाँकि, प्राचीन ग्रंथों में वर्णित विचारों को आधुनिक पर्यावरण विज्ञान का प्रत्यक्ष विकल्प नहीं माना जाना चाहिए। उनका महत्व मुख्यतः नैतिक प्रेरणा और जीवन-मूल्यों के संदर्भ में है। आधुनिक परिस्थितियों में इन विचारों को वैज्ञानिक ज्ञान, पर्यावरणीय नियोजन और सामाजिक न्याय के सिद्धांत के साथ जोड़कर समझना अधिक उपयोगी होगा। गाडगिल और गुहा (1995) जैसे अध्ययन भी यह स्मरण कराते हैं कि भारत में संसाधनों के उपयोग का प्रश्न नैतिक आदर्शों के साथ-साथ सामाजिक समूहों के हित और असमानताओं से भी जुड़ा रहा है।

सतत जीवनशैली के व्यावहारिक आयाम

1. ऊर्जा संरक्षण

ऊर्जा की बचत सतत जीवनशैली का एक महत्वपूर्ण पक्ष है। ऊर्जा-कुशल उपकरणों का उपयोग, अनावश्यक प्रकाश बंद करना, भवनों में प्राकृतिक रोशनी और वायु-संचार को बढ़ावा देना तथा जहाँ संभव है, नवीकरणीय ऊर्जा अपनाना पर्यावरणीय दबाव कम करने में सहायक हो सकता है। इसके प्रभाव ऊर्जा उत्पादन की प्रकृति और स्थानीय परिस्थितियों पर भी निर्भर करते हैं।

2. जल संरक्षण

जल संरक्षण के लिए वर्षा जल संचयन, घरेलू स्तर पर जल का विवेकपूर्ण उपयोग, जल रिसाव की रोकथाम और स्थानीय जलस्रोतों की देखभाल आवश्यक है। ग्रामीण क्षेत्रों में तालाबों, कुओं और अन्य पारंपरिक जलस्रोतों का संरक्षण महत्वपूर्ण हो सकता है, जबकि नगरीय क्षेत्रों में वर्षा जल संचयन, जल पुनर्चक्रण और जल निकासी व्यवस्था पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए।

3. परिवहन और आवागमन

नगरीय क्षेत्रों में निजी वाहनों पर अत्यधिक निर्भरता यातायात जाम, वायु प्रदूषण और ऊर्जा खपत को बढ़ा सकती है। जहाँ सुविधाएँ उपलब्ध हैं, वहाँ सार्वजनिक परिवहन, पैदल चलना, साइकिल का उपयोग और साझा परिवहन अपनाना उपयोगी विकल्प हैं। इन विकल्पों को बढ़ावा देने के लिए सुरक्षित पैदल मार्ग, साइकिल पथ और सुलभ सार्वजनिक परिवहन व्यवस्था आवश्यक है।

4. भोजन और उपभोग

भोजन की बर्बादी रोकना, आवश्यकतानुसार खरीदारी करना, टिकाऊ वस्तुओं को प्राथमिकता देना और उपयोगी वस्तुओं का पुनः उपयोग करना संसाधनों की बचत में योगदान दे सकता है। स्थानीय खाद्य प्रणालियों को समझना भी उपयोगी है, क्योंकि उत्पादन, भंडारण और परिवहन की परिस्थितियाँ भोजन के पर्यावरणीय प्रभाव को प्रभावित करती हैं।

5. अपशिष्ट प्रबंधन और चक्रीय अर्थव्यवस्था

घरेलू कचरे का पृथक्करण, जैविक कचरे से खाद बनाना, पुनर्चक्रण योग्य सामग्री को अलग रखना तथा एकल-उपयोग वाली वस्तुओं की खपत कम करना सतत जीवनशैली के महत्वपूर्ण उपाय हैं। चक्रीय अर्थव्यवस्था का उद्देश्य उत्पादों और सामग्रियों को यथासंभव लंबे समय तक उपयोग में बनाए रखना तथा अपशिष्ट उत्पादन को कम करना है।

भौगोलिक आयाम: ग्रामीण एवं नगरीय परिप्रेक्ष्य

भौगोलिक दृष्टि से सतत जीवनशैली का स्वरूप स्थान-विशिष्ट होता है। ग्रामीण क्षेत्रों में पर्यावरणीय संबंध मुख्यतः कृषि, सिंचाई, ईंधन और वन संसाधनों के माध्यम से निर्धारित होते हैं, जबकि नगरीय क्षेत्रों में परिवहन, आवास, ऊर्जा खपत, ठोस अपशिष्ट और जल निकासी अधिक प्रमुख होते हैं।

तालिका 2 इस अध्ययन के विश्लेषण के आधार पर दोनों परिप्रेक्ष्यों की अवधारणात्मक तुलना प्रस्तुत करती है। यह तुलना सामान्य प्रवृत्तियों का संकेत है; किसी विशिष्ट क्षेत्र के लिए इसका सत्यापन क्षेत्रीय आँकड़ों से किया जाना चाहिए।

तालिका 2: ग्रामीण एवं नगरीय क्षेत्रों में सतत जीवनशैली के प्रमुख आयाम (अवधारणात्मक तुलना)

आयाम	ग्रामीण परिप्रेक्ष्य	नगरीय परिप्रेक्ष्य
प्रमुख संसाधन-संबंध	कृषि, सिंचाई, ईंधन, वन संसाधन	परिवहन, आवास, ऊर्जा खपत
जल	तालाब, कुएँ और पारंपरिक जलस्रोतों का संरक्षण	वर्षा जल संचयन, पुनर्चक्रण, जल निकासी
अपशिष्ट	जैविक कचरे का स्थानीय उपयोग, एकल-उपयोग वस्तुओं का नियंत्रण	ठोस अपशिष्ट पृथक्करण एवं प्रबंधन
गतिशीलता	स्थानीय आवागमन और सुलभ साधन	सार्वजनिक परिवहन, पैदल एवं साइकिल पथ
प्राथमिक नीतिगत ध्यान	सामुदायिक संसाधन-संरक्षण, भू-जल	वायु गुणवत्ता, हरित क्षेत्र, अपशिष्ट प्रबंधन

पर्यावरणीय न्याय और सामाजिक उत्तरदायित्व

पर्यावरणीय समस्याओं का प्रभाव समाज के सभी वर्गों पर समान रूप से नहीं पड़ता। आर्थिक रूप से कमज़ोर समुदाय, प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भर ग्रामीण आबादी तथा प्रदूषण-प्रभावित क्षेत्रों में रहने वाले लोग अनेक बार पर्यावरणीय क्षति का अधिक भार उठाते हैं, जबकि संसाधनों के उपयोग से मिलने वाले लाभों का वितरण असमान हो सकता है।²⁵ इस संदर्भ में पर्यावरणीय न्याय का अर्थ है कि स्वच्छ जल, स्वच्छ वायु और सुरक्षित पर्यावरण तक पहुँच सुनिश्चित की जाए तथा पर्यावरणीय निर्णयों में प्रभावित समुदायों की भागीदारी को महत्व दिया जाए। उदाहरण के लिए, स्वच्छ ऊर्जा अपनाने की सलाह तभी व्यापक रूप से प्रभावी हो सकती है, जब उसकी लागत और उपलब्धता को ध्यान में रखा जाए। इसी प्रकार सार्वजनिक परिवहन के उपयोग को बढ़ावा देने के लिए सुलभ, सुरक्षित और विश्वसनीय परिवहन सेवाओं का विकास आवश्यक है। इसलिए पर्यावरणीय उत्तरदायित्व को सामाजिक समानता और संस्थागत सहयोग के साथ जोड़ना चाहिए।

प्रमुख चुनौतियाँ और समाधान

सतत जीवनशैली के मार्ग में अनेक बाधाएँ हैं। इनमें उपभोक्तावादी प्रवृत्तियाँ, पर्यावरणीय जागरूकता की कमी, पर्यावरण-अनुकूल विकल्पों की सीमित उपलब्धता, कमज़ोर अपशिष्ट प्रबंधन और अल्पकालिक आर्थिक लाभ को प्राथमिकता देना प्रमुख हैं। कई बार लोगों में पर्यावरण संरक्षण की इच्छा होने के बावजूद आवश्यक सुविधाओं के अभाव में व्यवहार परिवर्तन संभव नहीं हो पाता। इन चुनौतियों से निपटने के लिए विद्यालयों और विश्वविद्यालयों में पर्यावरणीय शिक्षा को व्यावहारिक गतिविधियों से जोड़ना आवश्यक है। स्थानीय निकायों को कचरा प्रबंधन, जल संरक्षण और हरित सार्वजनिक स्थलों के विकास पर ध्यान देना चाहिए। समुदाय आधारित जल एवं वन संरक्षण कार्यक्रमों को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। साथ ही, ऐसी नीतियाँ विकसित करना आवश्यक है, जो स्वच्छ ऊर्जा, सार्वजनिक परिवहन और टिकाऊ उत्पादों को अधिक सुलभ बनाएँ। भौगोलिक दृष्टि से समाधान स्थानीय परिस्थितियों के अनुरूप होने चाहिए। जल-संकट वाले क्षेत्रों में जल संरक्षण और भू-जल प्रबंधन प्राथमिकता होनी चाहिए, जबकि बड़े नगरों में सार्वजनिक परिवहन, वायु गुणवत्ता और ठोस अपशिष्ट प्रबंधन पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। इससे पर्यावरणीय नीतियों की प्रासंगिकता और प्रभावशीलता बढ़ सकती है।

सुझाव

1. सतत जीवनशैली को प्रोत्साहित करने के लिए पर्यावरणीय शिक्षा को दैनिक जीवन की गतिविधियों से जोड़ना चाहिए।
2. शैक्षणिक संस्थानों में जल संरक्षण, ऊर्जा बचत, जैविक कचरा प्रबंधन और स्थानीय जैव विविधता के संरक्षण से संबंधित कार्यक्रम चलाए जा सकते हैं।
3. स्थानीय निकायों को क्षेत्र की भौगोलिक परिस्थितियों के अनुरूप पर्यावरणीय योजनाएँ तैयार करनी चाहिए।
4. ग्रामीण क्षेत्रों में पारंपरिक जलस्रोतों और सामुदायिक संसाधनों के संरक्षण को बढ़ावा दिया जा सकता है, जबकि नगरीय क्षेत्रों में सार्वजनिक परिवहन, हरित क्षेत्र, वर्षा जल संचयन और अपशिष्ट प्रबंधन को प्राथमिकता दी जानी चाहिए।
5. व्यक्तिगत स्तर पर आवश्यकतानुसार उपभोग, जल एवं ऊर्जा की बचत, भोजन की बर्बादी और वस्तुओं का पुनः उपयोग जैसे कदम अपनाए जा सकते हैं।
6. नीति-निर्माताओं को यह भी सुनिश्चित करना चाहिए कि पर्यावरण-अनुकूल विकल्प आर्थिक रूप से सुलभ हों और उनके लाभ समाज के विभिन्न वर्गों तक पहुँचें।

निष्कर्ष

पर्यावरणीय नैतिकता और सतत जीवनशैली का संबंध केवल सैद्धांतिक विचारों तक सीमित नहीं है, बल्कि यह मानव समाज के विकास की दिशा और प्राकृतिक संसाधनों के भविष्य से जुड़ा हुआ है। पर्यावरणीय नैतिकता मनुष्य को प्रकृति के प्रति अपने दायित्वों का बोध कराती है, जबकि सतत जीवनशैली इन दायित्वों को दैनिक व्यवहार में लागू करने का अवसर प्रदान करती है। वर्तमान पर्यावरणीय चुनौतियों के समाधान के लिए तकनीकी उपायों और नीतिगत प्रयासों के साथ-साथ उपभोग की प्रवृत्तियों, सामाजिक मूल्यों और विकास की प्राथमिकताओं पर भी विचार करना आवश्यक है। भौगोलिक दृष्टिकोण इस प्रक्रिया

को अधिक व्यावहारिक बनाता है, क्योंकि वह स्थानीय संसाधनों, पर्यावरणीय परिस्थितियों और सामाजिक आवश्यकताओं के बीच संबंधों को स्पष्ट करता है। अंततः, सतत जीवनशैली का विकास तभी संभव है जब व्यक्तिगत जिम्मेदारी, सामाजिक सहभागिता और संस्थागत सहयोग एक-दूसरे के पूरक बनें। प्रकृति के संरक्षण को केवल वर्तमान आवश्यकताओं की पूर्ति का साधन न मानकर भावी पीढ़ियों के प्रति उत्तरदायित्व के रूप में स्वीकार करना अधिक संतुलित और न्यायपूर्ण विकास की दिशा में महत्वपूर्ण कदम होगा।

संदर्भ सूची

1. Rockström, J., Steffen, W., Noone, K., Persson, Å., Chapin, F. S., III, Lambin, E. F., Lenton, T. M., Scheffer, M., Folke, C., Schellnhuber, H. J., Nykvist, B., de Wit, C. A., Hughes, T., van der Leeuw, S., Rodhe, H., Sörlin, S., Snyder, P. K., Costanza, R., Svedin, U., ... Foley, J. A. (2009). Planetary boundaries: Exploring the safe operating space for humanity. *Ecology and Society*, 14(2), Article 32. <https://doi.org/10.5751/ES-03180-140232>
2. United Nations Environment Programme. (2019). *Global environment outlook – GEO-6: Healthy planet, healthy people*. Cambridge University Press. <https://wedocs.unep.org/20.500.11822/27539>
3. Leopold, A. (1949). *A sand county almanac, and sketches here and there*. Oxford University Press.
4. Naess, A. (1973). The shallow and the deep, long-range ecology movement: A summary. *Inquiry*, 16(1–4), 95–100. <https://doi.org/10.1080/00201747308601682>
5. Leopold, A. (1949).
6. Naess, A. (1973).
7. United Nations Environment Programme. (n.d.). Why sustainable lifestyles. <https://www.unep.org/explore-topics/resource-efficiency/what-we-do/sustainable-lifestyles/why-sustainable-lifestyles>
8. United Nations Environment Programme. (2024). Promoting sustainable lifestyles (UNEP/EA.6/Res.8). United Nations Environment Assembly, sixth session. <https://documents.un.org/doc/undoc/gen/k24/008/01/pdf/k2400801.pdf>
9. United Nations Environment Programme. (2017). *Fostering and communicating sustainable lifestyles: Principles and emerging practices – Full report*. UNEP. <https://wedocs.unep.org/20.500.11822/17016>
10. Jackson, T. (2009). *Prosperity without growth: Economics for a finite planet*. Earthscan.
11. Kollmuss, A., & Agyeman, J. (2002). Mind the gap: Why do people act environmentally and what are the barriers to pro-environmental behavior? *Environmental Education Research*, 8(3), 239–260.
12. Courtenay-Hall, P., & Rogers, L. (2002). Gaps in mind: Problems in environmental knowledge-behaviour modelling research. *Environmental Education Research*, 8(3), 283–297. <https://doi.org/10.1080/13504620220145438>
13. O'Donoghue, R., & Lotz-Sisitka, H. (2002). Some insights on the gap. *Environmental Education Research*, 8(3), 261–272. <https://doi.org/10.1080/13504620220145410>
14. Schlosberg, D. (2007). *Defining environmental justice: Theories, movements, and nature*. Oxford University Press. <https://doi.org/10.1093/acprof:oso/9780199286294.001.0001>
15. Gadgil, M., & Guha, R. (1995). *Ecology and equity: The use and abuse of nature in contemporary India*. Routledge.

- 16 . Bloomfield, M. (1897). Hymns of the Atharva-Veda (Sacred Books of the East, Vol. 42). Clarendon Press.
- 17 . UNESCO. (2017). Education for sustainable development goals: Learning objectives. UNESCO. <http://unesdoc.unesco.org/images/0024/002474/247444e.pdf>
- 18 . United Nations Environment Programme. (2010). Here and now! Education for sustainable consumption: Recommendations and guidelines. UNEP. <https://wedocs.unep.org/20.500.11822/8011>
- 19 . Leopold, A. (1949).
- 20 . Naess, A. (1973).
- 21 . World Commission on Environment and Development. (1987). Our common future. Oxford University Press.
- 22 . Kollmuss, A., & Agyeman, J. (2002).
- 23 . Jackson, T. (2009).
- 24 . Bloomfield, M. (1897).
- 25 . Gadgil, M., & Guha, R. (1995)